[2021] 2 उम. नि. प. 317

अनवर सिंह उर्फ किरन सिंह फते सिंह ज़ाला

बनाम

गुजरात राज्य

[2010 की दांडिक अपील सं. 1919]

12 जनवरी, 2021

न्यायमूर्ति एन. वी. रमना, न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नज़ीर और न्यायमूर्ति सूर्य कांत

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 363 और 366 – विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण – अभियुक्त द्वारा 16 वर्षीय अप्राप्तव्य लड़की का व्यपहरण किया जाना – अभियुक्त द्वारा अभियोक्त्री के साथ प्रेम-संबंध होने और स्वेच्छा से उसके साथ जाने का अभिवाक् किया जाना – चूंकि अभियोक्त्री की आयु स्वीकृत रूप से 18 वर्ष से कम थी और अप्राप्तवय को विधिपूर्ण सम्मति देने के अयोग्य समझा जाता है, इसलिए किसी अप्राप्तवय के व्यपहरण के आरोप के विरुद्ध सहमतिजन्य संबंध प्रतिरक्षा नहीं हो सकती है और अभियुक्त की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित होने पर उसकी दोषसिद्धि उचित है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 363 और 366 – विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण – अभियुक्त द्वारा 16 वर्षीय अप्राप्तव्य लड़की का व्यपहरण किया जाना – अभियुक्त की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध हो जाना – दोषसिद्धि – पांच वर्ष का कठोर कारावास अधिरोपित किया जाना – दंडादेश का उपांतरण – जहां यह पाया गया हो कि अभियुक्त और अभियोक्त्री के बीच प्रेम संबंध थे और व्यपहरण करने में किसी बल या आयुध का प्रयोग नहीं किया गया था, कोई पूर्व-योजना नहीं थी और आशय भी अभद्र नहीं था तथा घटना लगभग बाईस वर्ष पहले घटित हुई थी और अभियुक्त पर कोई और आरोप न होने या आपराधिक पृष्ठभूमि न होने की बात पर विचार करते हुए उसके दंडादेश

को उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि तक कम करने से न्याय के उद्देश्य की पूर्ति हो जाएगी ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि शिकायतकर्ता-किरनसिंह जालमसिंह (अभि. सा. 1) तारीख 14 मई, 1998 की रात्रि में जब काम से वापस आया तो उसकी पत्नी द्वारा उसे सूचित किया गया कि उनकी 16 वर्षीया ज्येष्ठ पुत्री (अभि. सा. 3; जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अभियोक्त्री' कहा गया है) घर नहीं लौटी है । आठवीं कक्षा तक शिक्षित अभियोक्त्री नौकरानी के रूप में काम करती थी; प्रत्येक दोपहर और सायंकाल में कुछ घंटे साफ-सफाई और झाड़ू-पोंछे का काम करती थी । शिकायतकर्ता-पिता ने उसके कार्यस्थल पर पूछताछ की जहां से उसे एक चौकीदार से पता चला कि उसकी पुत्री अपनी दूसरी पारी के लिए नहीं आई थी और वह अंतिम बार अपीलार्थी के साथ रामजानी सोसाइटी के खाली पड़े बंगला संख्या 4 से बाहर आते हुए देखी गई थी । पूछताछ करने पर यह पता चला कि अपीलार्थी अभियोक्त्री को साथ लेकर सुरपुर में अपने घर चला गया है । शिकायतकर्ता अपने चाचा और साले के साथ अपीलार्थी के घर गया किंतु अभियोक्त्री के ठौर-ठिकाने का पता नहीं चल सका । अहमदाबाद वापस आने के पश्चात् तारीख 16 मई, 1998 को एक पुलिस शिकायत रजिस्ट्रीकृत की गई । पुलिस ने मोडसा के निकट एक खेत से अपीलार्थी और अभियोक्त्री दोनों को ढूंढ़ निकाला, जहां से उन्हें तारीख 21 मई, 1998 को वापस अहमदाबाद लाया गया । चिकित्सीय परीक्षण और उसके वस्त्रों के अभिग्रहण के पश्चात् अभियोक्त्री अपने परिवार के पास आ गई । अपीलार्थी ने तारीख 1 नवंबर, 2002 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन लेखबद्ध करने के प्रक्रम पर अपनी आयु 23 वर्ष बताई और निर्दोष होने का दावा किया । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से नियुक्त विधिक सहायता के काउंसेल ने अभियोजन पक्ष के आरोपों और पारिणामिक निष्कर्षों का खंडन किया । एक समानांतर वृत्तांत प्रस्तुत किया गया जिसमें यह कहा गया कि अपीलार्थी और अभियोक्त्री दोनों का अभिकथित रूप से प्यार था और घटना की तारीख के बहुत पहले से सहमतिजन्य शारीरिक संबंध थे । यह दावा किया गया कि अभियोक्त्री एकमात्र रूप से और पूर्णत: अपनी मर्जी से भागी थी तथा अपीलार्थी की ओर से किसी बहकावे के

बिना उससे विवाह करना चाहती थी । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 16 दिसंबर, 2002 के अपने आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोक्त्री के परिसाक्ष्य से असंदिग्ध रूप से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी द्वारा तीन से चार बार उसके साथ बलात्संग किया गया था और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन उसकी दोषसिद्धि उचित है । यह भी मत व्यक्त किया गया कि यद्यपि उनके प्रेम संबंध थे किंतु इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अभियोक्त्री की आयु घटना के समय 16 वर्ष, 3 माह और 6 दिन थी और इस प्रकार वह अप्राप्तव्य थी, इसलिए व्यपहरण के आरोप के लिए उसकी सम्मति पूर्णतया असंगत थी । बलपूर्वक अपहरण करने के अभियोक्त्री के दावे और अपीलार्थी के साथ उसके पाए जाने की बात को ध्यान में रखते हुए यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थी ने अप्राप्तव्य लड़की को मैथुन करने और विवाह करने के आशय से बहकाया था और विलुब्ध किया था और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 366 के सभी संघटक भली-भांति सिद्ध होते हैं । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी दोषसिद्धि को यह दावा करते हुए चुनौती दी कि पक्षकारों का प्रेम संबंध था जिसके कारण अभियोक्त्री ने अपने माता-पिता का घर छोड़ा था और अपनी स्वयं की स्वतंत्र इच्छा से उसके साथ गई थी । इसके अतिरिक्त, उसने कभी भी अनेक अवसरों के बावजूद कोई विरोध नहीं किया था या शोर नहीं मचाया था और इस प्रकार, 'व्यपहरण' या 'बलात्संग' का कोई भी संघटक सिद्ध नहीं होता है । उच्च न्यायालय ने अपीलाधीन अपने आदेश में यह मत व्यक्त किया कि अभियोक्त्री के अभियुक्त के साथ प्रेम संबंध होने की बात को किसी संदेह के बिना सिद्ध किया गया है और साथ ही साथ यह तथ्य भी है कि वे अक्सर मिलते रहते थे इसलिए अपीलार्थी को 'बलात्संग' कारित करने का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन उसकी पारिणामिक दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया । तथापि, यह सुझाव देने के लिए कोई साक्ष्य न होने के कारण कि अभियोक्त्री को उसके माता-पिता की विधिपूर्ण अभिरक्षा से ले जाने के लिए सम्मति दी थी और उसकी अविवादित अप्राप्तव्यता की बात पर विचार करते हुए अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 366 के अधीन दोषसिद्धि को कायम रखा गया । अभियुक्त-

अपीलार्थी द्वारा अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा भागत: अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 361 के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि यह आवश्यक है कि बालक की अप्राप्तव्यता (जो लड़कों के लिए सोलह वर्ष है और लड़कियों के लिए अठारह वर्ष है) और विधिपूर्ण संरक्षक की देख-रेख सिद्ध करने के अतिरिक्त, बहकाने या ले जाने का कृत्य होना चाहिए । ऐसा 'बहकाना' प्रत्यक्ष या समय के हिसाब से तत्काल होना आवश्यक नहीं है और यह किसी अप्राप्तव्य लड़की के प्रति स्नेह दिखाकर मोहित कर लेने जैसे चालाकी भरे कार्यों के द्वारा भी किया जा सकता है । अपीलार्थी ने अनजाने में अपनी सदोषिता को स्वीकार किया था । पीड़िता उसकी अभिरक्षा से बरामद होने के अतिरिक्त, अपीलार्थी ने उसके साथ मैथुन करने और विवाह करने का आशय होने की बात स्वीकार की थी । यद्यपि पीड़िता का अभिसाक्ष्य यह है कि उसे उसके माता-पिता की अभिरक्षा से बलपूर्वक ले जाया गया था, यह संभवत: बाद में किया गया एक सुधार हो सकता है किंतु अनेक साक्षियों के परिसाक्ष्यों से बहकाकर ले जाने का स्पष्ट मामला सिद्ध होता है । अभिलेख पर के साक्ष्य से भी असंदिग्ध रूप से यह सुझाव मिलता है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री को अपने साथ ले जाने हेतु एक अभिहित स्थान पर पहुंचने के लिए उत्प्रेरित किया था । सभी कानूनी बारीकियों की छानबीन के पश्चात्, अपीलार्थी यह प्रतिपादित करने में असफल रहा है कि व्यपहरण के संघटक कैसे सिद्ध नहीं होते हैं । उसकी मुख्य दलील यह प्रतीत होती है कि उनके बीच सहमतिजन्य संबंध को देखते हुए अभियोक्त्री स्वेच्छा से उसके साहचर्य में आई थी । इस न्यायालय की राय में ऐसे अभिवाक् को कानून की असंदिग्ध भाषा पर विचार करते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अभियोक्त्री स्वीकृत रूप से अठारह वर्ष से कम आयु की थी । ऊपर यथा उद्धृत सुसंगत विधिक उपबंधों के परिशीलन मात्र से यह दर्शित होता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 361 के प्रयोजनों के लिए अप्राप्तव्य की सम्मति अतात्विक है । वास्तव में, जैसा कि भारतीय दंड संहिता में के विभिन्न अन्य उपबंधों और भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 जैसी अन्य विधियों से

स्पष्ट होता है, अप्राप्तव्य विधिपूर्ण सम्मति देने के लिए असमर्थ समझे जाते हैं । इस धारा में किसी अप्राप्तव्य की शारीरिक सुरक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण विनिश्चय करने का सामर्थ्य लड़के/लड़की के संरक्षकों को दिया गया है । इसलिए किसी अप्राप्तव्य लड़की की अपने अभिकथित व्यपहरणकर्ता के साथ आसक्ति को स्वयमेव एक प्रतिरक्षा के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करना व्यपहरण के अपराध के संरक्षात्मक तत्व को गुप्त रूप से निर्बल करने की कोटि में आएगा । इसी प्रकार, भारतीय दंड संहिता की धारा 366 का आधारतत्व यह है कि जब एक बार अभियोजन पक्ष यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत कर देता है कि व्यपहरण लड़की को विवाह के लिए विवश करने के आशय/ज्ञान के साथ या अयुक्त संभोग करने के लिए उसे विवश/बहकाने के आशय/ज्ञान के साथ किया गया था, तो इस धारा के अधीन यथा उपबंधित 10 वर्ष का वर्धित दंड लागू होगा । दुर्भाग्यवश, अपीलार्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि घटना में उसकी कोई सक्रिय भूमिका नहीं थी । बल्कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने इसके प्रतिकूल साक्ष्य दिया है जिससे यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री को उसके माता-पिता की अभिरक्षा से कैसे हटाया था । यहां तक कि अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सुझाव देने के लिए कुछ नहीं है कि अभियोक्त्री अपने कार्यों के तात्पर्य से पूरी तरह अनभिज्ञ थी या अपनी देख-रेख करने के लिए वह मानसिक रूप से कुशाग्र और परिपक्व थी । युवा होने के अतिरिक्त अभियोक्त्री अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थी । उसके द्वारा अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करना और उसकी ओर से कोई स्वेच्छापूर्वक कार्य करने की बात से साफ-साफ इनकार करना, यदि यह उपधारणा कर भी ली जाए कि उसने यह अपने माता-पिता के प्रभाव के अधीन किया था, जैसा कि अपीलार्थी द्वारा दावा किया गया है, तो भी यह बहुत ही कम उपदर्शित होता है कि उसे अपने कार्यों की पूर्ण रूप से समझ-बूझ नहीं थी । यह स्पष्ट है कि कोई विधिमान्य प्रतिरक्षा होने के बजाय अपीलार्थी की जोरदार दलीलों में केवल अपनी बात को न्यायोचित ठहराया गया है जिनसे यद्यपि इस न्यायालय की सहानुभूति पैदा होती है, किंतु इससे विधि परिवर्तित नहीं हो सकती है । चूंकि भारतीय दंड संहिता के सुसंगत उपबंधों का किसी अन्य रीति में अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता है और उनके स्पष्ट और शाब्दिक अर्थ

से अपीलार्थी के लिए कोई बचाव का रास्ता नहीं बचता है, इसलिए निचले न्यायालय प्रकटत: यह मत व्यक्त करने में सही थे कि अप्राप्तव्य की सम्मति व्यपहरण के आरोप के लिए कोई प्रतिरक्षा नहीं होगी । अत: भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि में कोई गलती नहीं पाई जा सकती है । (पैरा 12, 13, 14, 15, 16, 18 और 19)

यह सही है कि दंडादेश में तब तक किसी यांत्रिक रीति में कमी नहीं की जा सकती है जब तक कि सभी सुसंगत कारकों पर विचार न किया गया हो और उसके उपरांत न्यायालय ने पाया हो कि मामले में घोर अन्याय करके, कठोरता से या सुस्पष्टतया स्वेच्छाचारिता से अयुक्तियुक्त दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया है । इस प्रकार, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि क्या वरिष्ठ न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप करना चाहिए या नहीं और परिणामस्वरूप दंडादेश में वृद्धि या कमी की जानी चाहिए या नहीं । प्रस्तुत मामले के विलक्षण तथ्यों और निकाले गए निष्कर्षों पर ये बातें लागू करते हुए, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि अपीलार्थी को दिए गए दंडादेश की मात्रा पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए । यह न्यायालय ऐसा निम्नलिखित कारणों से कह रहा है: प्रथम, यह स्पष्ट है कि व्यपहरण के कार्य में कोई बल प्रयुक्त नहीं किया गया था । कोई पूर्व योजना नहीं थी, किसी आयुध का प्रयोग नहीं किया गया था या कोई अभद्र हेतु नहीं था । यद्यपि भारतीय दंड संहिता की धारा 359 और 361 के अधीन यथापरिभाषित अपराध में ऐसा कोई संघटक नहीं है जिसमें किसी बल का प्रयोग किए जाने या कोई अस्पष्ट आशय सिद्ध करने की आवश्यकता हो, तो भी दंडादेश देने के प्रक्रम पर अपराध की अनिष्ठुरता पर विचार किया जाना चाहिए । द्वितीय, यद्यपि यह एक निर्धारक कारक नहीं है, तो भी घटना के समय पर अभियुक्त की युवा आयु की अनदेखी नहीं की जा सकती है । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अपीलार्थी स्वयं वयस्कता के कगार पर था । अपराध करने के समय पर उसकी आयु लगभग 18 या 19 वर्ष से अधिक नहीं थी और स्वीकृत रूप से यह एक प्रेम संबंध का मामला था । अत: ऐसी युवा और अति-संवेदनशील आयु में उसके कार्यों को सुधार की आशा के साथ न

कि दंडात्मक दृष्टि से देखा जाना चाहिए । तृतीय, दीर्घकालिक विचारण और विभिन्न स्तरों पर विलंब होने के कारण, घटना घटित हुए बाईस वर्ष से अधिक बीत गए हैं । पीड़िता और अपीलार्थी दोनों की अब लगभग 40 वर्ष आयु हो गई है; समाज के उपयोगी सदस्य हैं और अपने-अपने पति और पत्नी तथा परिवारों के साथ जीवन में स्थापित हो गए हैं । अत: अपीलार्थी को इस प्रक्रम पर कारागार में वापस भेजने से न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती है । चतुर्थ, प्रस्तुत अपराध भावावेश में किया गया था । न तो वर्ष 1998 से पूर्व या अब तक कोई अन्य आरोप, पूर्ववर्ती इतिहास या अपराध हमारे ध्यान में नहीं लाया गया है । अपीलार्थी पुनर्वासित हो गया है और एक सामान्य जीवन जी रहा है । अत: पुन: अपराध करने की संभावना अत्यंत कम है । इन बहुत सारी विलक्षण परिस्थितियों को देखते हुए, इस न्यायालय की यह राय है कि निचले न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत पांच वर्ष का कठोर कारावास का दंडादेश इस मामले के तथ्यों के अननुपातिक है । समाज और पीड़ित दोनों के सरोकारों का सम्मान किया जा सकता है और अपीलार्थी के दंडादेश को उसके द्वारा पहले ही कैद में व्यतीत की गई अवधि तक कम करने से भयपरतिकारिता और सुधार दोनों सिद्धांतों की पूर्ति हो जाएगी । (पैरा 21, 22, 23, 24, 25 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 1 एस. सी. सी. 222 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **सुरेन्द्र सिंह** ;	20
[2015]	(2015) 7 एस. सी. सी. 359 : **सतीश कुमार जयंती लाल डाबगर** बनाम **गुजरात राज्य** ;	15
[1973]	[1973] 3 उम. नि. प. 611 = (1973) 2 एस. सी. सी. 413 : **ठाकुरलाल डी. वादगामा** बनाम **गुजरात राज्य**;	12, 26
[1973]	(1973)1 एस. सी. सी. 544 : **हरियाणा राज्य** बनाम **राजा राम** ;	26

[1965] (1965) 1 एस. सी. आर. 243 :
एस. वरदराजन बनाम **मद्रास राज्य** ; 9, 17

[1921] ए. आई. आर. 1921 अवध 226 :
किंग एम्परर बनाम **गोकरण** ; 12

[1916] ए. आई. आर. 1916 इलाहाबाद 210 :
एम्परर बनाम **अब्दुर रहमान** । 12

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 1919.

2003 की दांडिक अपील सं. 142 में गुजरात उच्च न्यायालय के तारीख 28 जुलाई, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री मनीषा टी. कारिया, सर्वश्री आदर्श कुमार, (सुश्री) निधि नागपाल, सुखदा कालरा और नरेश कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अनिरुद्ध पी. मेई

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सूर्य कांत ने दिया ।

न्या. कांत – यह अपील वीडियो कांफ्रेंसिंग के माध्यम से सुनी गई है । अपीलार्थी-अनवरसिंह ने गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 28 जुलाई, 2009 को सुनाए गए उस निर्णय को आक्षेपित किया है, जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (भारतीय दंड संहिता) की धारा 376 के अधीन उसकी दोषसिद्धि को उलट दिया गया था किंतु भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 366 के अधीन व्यपहरण के आरोप की पुष्टि की गई थी और पारिणामिक पांच वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को कायम रखा गया था ।

तथ्य

2. शिकायतकर्ता-किरनसिंह जालमसिंह (अभि. सा. 1) तारीख 14 मई, 1998 की रात्रि में जब काम से वापस आया तो उसकी पत्नी द्वारा उसे सूचित किया गया कि उनकी 16 वर्षीया ज्येष्ठ पुत्री (अभि. सा. 3; जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अभियोक्त्री' कहा गया है) घर नहीं लौटी है । आठवीं कक्षा तक शिक्षित अभियोक्त्री नौकरानी के रूप में काम करती

थी; प्रत्येक दोपहर और सायंकाल में कुछ घंटे साफ-सफाई और झाड़ू-पोंछे का काम करती थी । शिकायतकर्ता-पिता ने उसके कार्यस्थल पर पूछताछ की जहां से उसे एक चौकीदार से पता चला कि उसकी पुत्री अपनी दूसरी पारी के लिए नहीं आई थी और वह अंतिम बार अपीलार्थी के साथ रामजानी सोसाइटी के खाली पड़े बंगला संख्या 4 से बाहर आते हुए देखी गई थी । पूछताछ करने पर यह पता चला कि अपीलार्थी अभियोक्त्री को साथ लेकर सुरपुर में अपने घर चला गया है । शिकायतकर्ता अपने चाचा और साले के साथ अपीलार्थी के घर गया किंतु अभियोक्त्री के ठौर-ठिकाने का पता नहीं चल सका । अहमदाबाद वापस आने के पश्चात् तारीख 16 मई, 1998 को एक पुलिस शिकायत रजिस्ट्रीकृत की गई । पुलिस ने मोडसा के निकट एक खेत से अपीलार्थी और अभियोक्त्री दोनों को ढूंढ़ निकाला, जहां से उन्हें तारीख 21 मई, 1998 को वापस अहमदाबाद लाया गया । चिकित्सीय परीक्षण और उसके वस्त्रों के अभिग्रहण के पश्चात् अभियोक्त्री अपने परिवार के पास आ गई ।

3. अभियोजन पक्ष ने अपने इस पक्षकथन को साबित करने के लिए आठ साक्षियों की परीक्षा की और बारह दस्तावेज प्रस्तुत किए कि अपीलार्थी द्वारा अप्राप्तव्य अभियोक्त्री को विवाह करने के आशय से बलपूर्वक ले जाया गया था और बाद में उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके साथ संभोग किया था । अभियोक्त्री के पिता (अभि. सा. 1) ने ऊपर उल्लिखित घटनाओं के बयान की संपुष्टि की और यह साक्ष्य दिया कि उसकी पुत्री को, जिसकी आयु लगभग 15 वर्ष थी, उसकी अभिरक्षा से उसकी सम्मति के बिना ले जाया गया था । उसने अतिरिक्त रूप से यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उसे अभियोक्त्री की सहेली रेखा द्वारा यह सूचित किया गया था कि उसने अभियोक्त्री को एक लड़के के इस संदेश को उसे यह कहते हुए संसूचित किया था कि 'सारदा नगर' आ जाए । अभि. सा. 2, अभियोक्त्री के प्राथमिक विद्यालय का एक सहायक अध्यापक, विद्यालय का अभिलेख लाया और यह प्रमाणित किया कि दाखिले के समय पर उसकी जन्म की तारीख 8 फरवरी, 1992 अभिलिखित की गई थी । अभियोक्त्री (अभि. सा. 3) ने अपीलार्थी की शनाख्त की और यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसे काम पर जाते हुए रास्ते से उसके द्वारा पकड़ लिया गया था और बलपूर्वक एक आटो-रिक्शा में

निकटवर्ती बस अड्डे पर ले जाया गया था, जहां से उसे बस द्वारा अपीलार्थी के गांव ले जाया गया था । उसने यह भी दावा किया कि उसके साथ बार-बार बलात्संग किया गया था और अपीलार्थी के साथ विवाह करने के लिए दबाव डाला गया था । अभियोक्त्री ने प्रतिपरीक्षा के दौरान कभी भी अपीलार्थी के साथ प्यार होने, किसी पूर्ववर्ती तारीख को उसके साथ सहमतिजन्य मैथुन करने तथा पूर्ववर्ती अवसरों पर अपने घर के बाहर उससे मिलने की भी बात स्वीकार नहीं की । यह भी प्रकट हुआ कि उसके अभिकथित व्यपहरण के दौरान वह आटो-रिक्शा की पिछली सीट पर अन्य यात्रियों के साथ बैठी थी, जबकि अपीलार्थी अगली सीट पर बैठा था । उसने अपीलार्थी के गांव में एक सप्ताह व्यतीत करने की बात स्वीकार की, जहां से दोनों एक-साथ काम पर जाते थे और पति और पत्नी की तरह रहते थे । अभि. सा. 4 और अभि. सा. 6, जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को लेखबद्ध करने, अभियोक्त्री की शारीरिक हालत और अभियोक्त्री के वस्त्रों के अभिग्रहण के पंच साक्षी थे, दोनों पक्षद्रोही हो गए और अभियोजन पक्ष के वृत्तांत का खंडन किया । अभि. सा. 5, जो सिविल अस्पताल में डाक्टर था, ने चिकित्सीय अभिलेख को साबित किया और क्षति प्रमाणपत्रों से यह दर्शित हो रहा था कि अभियोक्त्री के साथ वास्तव में मैथुन किया गया था । अंततः, अभि. सा. 7, जो वह पुलिस अधिकारी था जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की थी और अभि. सा. 8 ने मामले का अन्वेषक अधिकारी होने के नाते अभिसाक्ष्य दिया ।

4. यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 8) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में रेखा के कथन का कोई उल्लेख नहीं था; अभियोक्त्री ने यह कथन नहीं किया था कि अपीलार्थी ने काम पर जाते हुए रास्ते से उसे पकड़ लिया था और उसे बलपूर्वक अपहृत किया गया था या उसकी लज्जा को भंग किया गया था । इसके बजाय, अभि. सा. 8 ने यह प्रकट किया कि अभियोक्त्री ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (दंड प्रक्रिया संहिता) की धारा 161 के अधीन अपने कथन में घटना के एक माह पूर्व से अपीलार्थी को जानने और अपने कार्यस्थल के निकट टूटे-फूटे बंगले में नियमित रूप से शारीरिक संबंध बनाने का दावा किया था । उस बंगले

से बाहर आते समय चौकीदार द्वारा उन्हें पकड़ने के पश्चात् वे सुरपुर भाग गए थे जहां उन्होंने आजीविका कमाने के लिए भीकाभाई नामक व्यक्ति के खेत पर मजदूरी का काम करना शुरू कर दिया और पति-पत्नी के रूप में रहने लगे । इन मौखिक अभिसाक्ष्यों के अतिरिक्त अभियोजन पक्ष ने जन्म प्रमाणपत्र, चिकित्सीय कागजात, न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट, पुलिस के और अन्य अभिलेख के रूप में दस्तावेज भी प्रस्तुत किए ।

5. अपीलार्थी ने तारीख 1 नवंबर, 2002 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन लेखबद्ध करने के प्रक्रम पर अपनी आयु 23 वर्ष बताई और निर्दोष होने का दावा किया । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से नियुक्त विधिक सहायता के काउंसेल ने अभियोजन पक्ष के आरोपों और पारिणामिक निष्कर्षों का खंडन किया । एक समानांतर वृत्तांत प्रस्तुत किया गया जिसमें यह कहा गया कि अपीलार्थी और अभियोक्त्री दोनों का अभिकथित रूप से प्यार था और घटना की तारीख के बहुत पहले से सहमतिजन्य शारीरिक संबंध थे । यह दावा किया गया कि अभियोक्त्री एकमात्र रूप से और पूर्णत: अपनी मर्जी से भागी थी तथा अपीलार्थी की ओर से किसी बहकावे के बिना उससे विवाह करना चाहती थी । कई सारे पूर्ववर्ती निर्णयों को यह दर्शित करने के लिए उद्धृत किया गया कि प्रेम संबंधों के ऐसे मामलों में न तो व्यपहरण और न ही बलात्संग के आरोप बनते हैं ।

6. विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 16 दिसंबर, 2002 के अपने आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोक्त्री के परिसाक्ष्य से असंदिग्ध रूप से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी द्वारा तीन से चार बार उसके साथ बलात्संग किया गया था और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन उसकी दोषसिद्धि उचित है । यह भी मत व्यक्त किया गया कि यद्यपि उनके प्रेम संबंध थे किंतु इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अभियोक्त्री की आयु घटना के समय 16 वर्ष, 3 माह और 6 दिन थी और इस प्रकार वह अप्राप्तव्य थी, इसलिए व्यपहरण के आरोप के लिए उसकी सम्मति पूर्णतया असंगत थी । बलपूर्वक अपहरण करने के अभियोक्त्री के दावे और अपीलार्थी के साथ

उसके पाए जाने की बात को ध्यान में रखते हुए यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थी ने अप्राप्तव्य लड़की को मैथुन करने और विवाह करने के आशय से बहकाया था और विलुब्ध किया था और इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 366 के सभी संघटक भली-भांति सिद्ध होते हैं । विचारण न्यायालय ने अपराध की गंभीर प्रकृति पर विचार करते हुए धारा 363 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास और 1000/- रूपए के जुर्माने; धारा 366 के अधीन अपराध के लिए पांच वर्ष के कठोर कारावास और 5,000/- रुपए के जुर्माने (या इसके बदले तीन माह का साधारण कारावास) और धारा 376 के अधीन अपराध के लिए दस वर्ष के कठोर कारावास और 10,000/- रुपए के जुर्माने (या इसके बदले में छह माह का साधारण कारावास) का दंडादेश दिया ।

7. अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी दोषसिद्धि को यह दावा करते हुए चुनौती दी कि पक्षकारों का प्रेम संबंध था जिसके कारण अभियोक्त्री ने अपने माता-पिता का घर छोड़ा था और अपनी स्वयं की स्वतंत्र इच्छा से उसके साथ गई थी । इसके अतिरिक्त, उसने कभी भी अनेक अवसरों के बावजूद कोई विरोध नहीं किया था या शोर नहीं मचाया था और इस प्रकार, 'व्यपहरण' या 'बलात्संग' का कोई भी संघटक सिद्ध नहीं होता है ।

8. उच्च न्यायालय ने अपीलाधीन अपने आदेश में यह मत व्यक्त किया कि अभियोक्त्री के अभियुक्त के साथ प्रेम-संबंध होने की बात को किसी संदेह के बिना सिद्ध किया गया है और साथ ही साथ यह तथ्य भी है कि वे अक्सर मिलते रहते थे इसलिए अपीलार्थी को 'बलात्संग' कारित करने का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन उसकी पारिणामिक दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया । तथापि, यह सुझाव देने के लिए कोई साक्ष्य न होने के कारण कि अभियोक्त्री को उसके माता-पिता की विधिपूर्ण अभिरक्षा से ले जाने के लिए सम्मति दी थी और उसकी अविवादित अप्राप्तव्यता की बात पर विचार करते हुए अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 366 के अधीन दोषसिद्धि को

कायम रखा गया ।

पक्षकारों की दलीलें

9. अपीलार्थी ने व्यपहरण के आरोप के अधीन अपनी दोषसिद्धि से व्यथित होकर अपनी निर्दोषिता का पुन: प्राख्यान करते हुए इस न्यायालय के समक्ष समावेदन किया है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह रेखांकित किया कि उच्च न्यायालय ने यह अभिस्वीकृति की थी कि पक्षकारों के बीच प्रेम-संबंध था, अक्सर मिलते रहते थे और सहमतिजन्य संबंध थे, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपीलार्थी की दोषमुक्ति को उचित ठहराती है । किंतु उच्च न्यायालय ने साथ-ही-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया कि अभियोक्त्री अपने माता-पिता की अभिरक्षा से स्वेच्छा से नहीं गई थी और विवाह के लिए ले जाने के लिए सम्मति नहीं दी थी । यह दलील दी गई कि ये दोनों निष्कर्ष परस्पर विरोधाभासी हैं । **एस. वरदराजन** बनाम **मद्रास राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का इस बात की पुष्टि करने के लिए अवलंब लिया गया कि किसी अप्राप्तव्य लड़की द्वारा स्वेच्छा से घर का परित्याग कर देना व्यपहरण की कोटि में नहीं आएगा और किसी सक्रिय अंतर्ग्रस्तता के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी अभियोक्त्री को 'ले गया था' या 'बहकाया था' ।

10. इसके विपरीत राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया । उन्होंने कानून (भारतीय दंड संहिता) की स्पष्ट भाषा के साथ पठित निचले न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों पर बल दिया और यह दोहराया कि 18 वर्ष से कम आयु की लड़की की सम्मति भारतीय दंड संहिता की धारा 361 के अर्थान्तर्गत 'व्यपहरण' के मामले में कोई बहाना नहीं हो सकता है ।

विश्लेषण

I. **क्या सहमतिजन्य संबंध किसी अप्राप्तव्य के व्यपहरण के आरोप के विरुद्ध एक प्रतिरक्षा हो सकती है ?**

---

[1] [1965] 1 एस. सी. आर. 243.

11. परस्पर-विरोधी दलीलों पर गहराई से विचार करने के पश्चात् हमें यह प्रतीत होता है कि यद्यपि आक्षेपित निर्णय संक्षिप्त और स्पष्ट शब्दों में है, तो भी व्यपहरण की विधि का मूल्यांकन करने में कोई गलती नहीं की गई है । भारतीय दंड संहिता की धारा 361 और 366 के सुसंगत भागों को उद्धृत करना उपयोगी होगा, जिनमें 'विधिपूर्ण संरक्षता में से व्यपहरण' और पारिणामिक दंड को परिभाषित किया गया है । ये उपबंध निम्नलिखित हैं :–

> "**361. विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण**– जो कोई किसी अप्राप्तव्य को, यदि वह नर हो, तो सोलह वर्ष से कम आयु वाले को, या यदि वह नारी हो तो, अठारह वर्ष से कम आयु वाली को या किसी विकृत चित्त व्यक्ति को, ऐसे अप्राप्तव्य या विकृत चित्त व्यक्ति के विधिपूर्ण संरक्षता में से ऐसे संरक्षक की सम्मति के बिना ले जाता है या बहका ले जाता है, वह ऐसे अप्राप्तव्य या ऐसे व्यक्ति का विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण करता है, यह कहा जाता है ।
>
> **स्पष्टीकरण** – इस धारा में 'विधिपूर्ण संरक्षक' शब्दों के अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता है जिस पर ऐसे अप्राप्तव्य या अन्य व्यक्ति की देख-रेख या अभिरक्षा का भार विधिपूर्वक न्यस्त किया गया है ।
>
> xxx xxx xxx
>
> **366. विवाह आदि के करने को विवश करने के लिए किसी स्त्री को व्यपहृत करना, अपहृत करना या उत्प्रेरित करना**– जो कोई किसी स्त्री का व्यपहरण या अपहरण उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए उस स्त्री को विवश करने के आशय से या वह विवश की जाएगी, यह संभाव्य जानते हुए अथवा अयुक्त संभोग करने के लिए उस स्त्री को विवश या विलुब्ध करने के लिए या वह स्त्री अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध की जाएगी यह संभाव्य जानते हुए करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि 10 वर्ष तक की हो

सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा; और जो कोई किसी स्त्री को किसी अन्य व्यक्ति से अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध करने के आशय से या वह विवश या विलुब्ध की जाएगी यह संभाव्य जानते हुए इस संहिता में यथापरिभाषित आपराधिक अभित्रास द्वारा अथवा प्राधिकार के दुरुपयोग या विवश करने के अन्य साधन द्वारा उस स्त्री को किसी स्थान से जाने को उत्प्रेरित करेगा, वह भी पूर्वोक्त प्रकार से दंडित किया जाएगा ।"

12. भारतीय दंड संहिता की धारा 361 के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि यह आवश्यक है कि बालक की अप्राप्तव्यता (जो लड़कों के लिए सोलह वर्ष है और लड़कियों के लिए अठारह वर्ष है) और विधिपूर्ण संरक्षक की देख-रेख सिद्ध करने के अतिरिक्त, बहकाने या ले जाने का कृत्य होना चाहिए । ऐसा 'बहकाना' प्रत्यक्ष या समय के हिसाब से तत्काल होना आवश्यक नहीं है और यह किसी अप्राप्तव्य लड़की के प्रति स्नेह दिखाकर मोहित कर लेने जैसे चालाकी भरे कार्यों के द्वारा भी किया जा सकता है (**ठाकुरलाल डी. वादगामा** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाला मामला देखें) । तथापि, किसी गुमशुदा अप्राप्तव्य का किसी अजनबी व्यक्ति की अभिरक्षा से मात्र बरामद होने से स्वयंमेव व्यपहरण का अपराध सिद्ध नहीं हो जाएगा । इस प्रकार, जहां अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असफल रहता है कि संरक्षकता में से ले जाने की घटना अभियुक्त द्वारा या उसके उकसाने पर कारित की गई थी, वहां दोषिता को सिद्ध करना लगभग असंभाव्य होगा, जैसा कि **किंग एम्परर** बनाम **गोकरण**[2] और **एम्परर** बनाम **अब्दुर रहमान**[3] वाले मामलों में घटित हुआ था ।

13. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर आते हैं, अपीलार्थी ने अनजाने अपनी सदोषिता को स्वीकार किया था । पीड़िता उसकी अभिरक्षा से बरामद होने के अतिरिक्त, अपीलार्थी ने उसके साथ मैथुन करने और

---

[1] [1973] 3 उम. नि. प. 611 = (1973) 2 एस. सी. सी. 413.

[2] ए. आई. आर. 1921 अवध 226.

[3] ए. आई. आर. 1916 इलाहाबाद 210.

विवाह करने का आशय होने की बात स्वीकार की थी । यद्यपि पीड़िता का अभिसाक्ष्य यह है कि उसे उसके माता-पिता की अभिरक्षा से बलपूर्वक ले जाया गया था, यह संभवत: बाद में किया गया एक सुधार हो सकता है किंतु अनेक साक्षियों के परिसाक्ष्यों से बहकाकर ले जाने का स्पष्ट मामला सिद्ध होता है । अभिलेख पर के साक्ष्य से भी असंदिग्ध रूप से यह सुझाव मिलता है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री को अपने साथ ले जाने हेतु एक अभिहित स्थान पर पहुंचने के लिए उत्प्रेरित किया था ।

14. सभी कानूनी बारीकियों की छानबीन के पश्चात्, अपीलार्थी यह प्रतिपादित करने में असफल रहा है कि व्यपहरण के संघटक कैसे सिद्ध नहीं होते हैं । उसकी मुख्य दलील यह प्रतीत होती है कि उनके बीच सहमतिजन्य संबंध को देखते हुए अभियोक्त्री स्वेच्छा से उसके साहचर्य में आई थी । हमारी राय में ऐसे अभिवाक् को कानून की असंदिग्ध भाषा पर विचार करते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अभियोक्त्री स्वीकृत रूप से अठारह वर्ष से कम आयु की थी ।

15. ऊपर यथा उद्धृत सुसंगत विधिक उपबंधों के परिशीलन मात्र से, यह दर्शित होता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 361 के प्रयोजनों के लिए अप्राप्तव्य की सम्मति अतात्विक है । वास्तव में, जैसा कि भारतीय दंड संहिता में के विभिन्न अन्य उपबंधों और भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 जैसी अन्य विधियों से स्पष्ट होता है, अप्राप्तव्य विधिपूर्ण सम्मति देने के लिए असमर्थ समझे जाते हैं । (**सतीश कुमार जयंती लाल डाबगर** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाला मामला देखें) । भारतीय दंड संहिता की धारा 361 विशिष्ट रूप से इस साधारण उपधारणा से परे जाती है । इस धारा में किसी अप्राप्तव्य की शारीरिक सुरक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण विनिश्चय करने का सामर्थ्य लड़के/लड़की के संरक्षकों को दिया गया है । इसलिए किसी अप्राप्तव्य लड़की की अपने अभिकथित व्यपहरणकर्ता के साथ आसक्ति को स्वयमेव एक प्रतिरक्षा के रुप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करना व्यपहरण के अपराध के संरक्षात्मक तत्व को गुप्त रूप से निर्बल करने की कोटि में आएगा ।

---

[1] (2015) 7 एस. सी. सी. 359.

16. इसी प्रकार, भारतीय दंड संहिता की धारा 366 का आधारतत्व यह है कि जब एक बार अभियोजन पक्ष यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत कर देता है कि व्यपहरण लड़की को विवाह के लिए विवश करने के आशय/ज्ञान के साथ या अयुक्त संभोग करने के लिए उसे विवश/बहकाने के आशय/ज्ञान के साथ किया गया था, तो इस धारा के अधीन यथा उपबंधित 10 वर्ष का वर्धित दंड लागू होगा ।

17. **एस. वरदराजन** (उपर्युक्त) वाले मामले में का विनिश्चयाधार यद्यपि प्रथम दृष्टि में रोचक है, किंतु अपीलार्थी के मामले में कम ही सहायता मिलती है । तथ्यों के आधार पर यह मामला प्रभेदनीय है क्योंकि यह मामला "ले जाने" न कि "बहकाने" की घटना तक निर्बंधित था । इसके अतिरिक्त, **एस. वरदराजन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया था कि व्यपहरण का आरोप केवल ऐसे मामले में सिद्ध नहीं हो जाएगा जहां कोई अप्राप्तव्य लड़की, जिसे अपने कार्यों के प्रभाव का पूर्ण ज्ञान और जानने का सामर्थ्य हो, अभियुक्त की ओर से किसी सहायता या उत्प्रेरणा के बिना अपने संरक्षक की देखरेख का स्वेच्छा से परित्याग करती है । अत: उद्धृत निर्णय से सिद्ध किए बिना कोई सहायता नहीं मिल सकती है कि प्रथम, अप्राप्तव्य को अपने कार्यों का ज्ञान और जानने का सामर्थ्य था; द्वितीय, अप्राप्तव्य द्वारा स्वेच्छा से परित्याग किया गया था और तृतीय, अभियुक्त द्वारा उत्प्रेरित नहीं किया गया था ।

18. दुर्भाग्यवश, अपीलार्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि घटना में उसकी कोई सक्रिय भूमिका नहीं थी । बल्कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने इसके प्रतिकूल साक्ष्य दिया है जिससे यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी ने अभियोक्त्री को उसके माता-पिता की अभिरक्षा से कैसे हटाया था । यहां तक कि अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सुझाव देने के लिए कुछ नहीं है कि अभियोक्त्री अपने कार्यों के तात्पर्य से पूरी तरह अभिज्ञ थी या अपनी देख-रेख करने के लिए वह मानसिक रूप से कुशाग्र और परिपक्व थी । युवा होने के अतिरिक्त अभियोक्त्री अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थी । उसके द्वारा अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करना और उसकी ओर से कोई स्वेच्छापूर्वक कार्य करने की बात से साफ-साफ

इनकार करना, यदि यह उपधारणा कर भी ली जाए कि उसने यह अपने माता-पिता के प्रभाव के अधीन किया था, जैसा कि अपीलार्थी द्वारा दावा किया गया है, तो भी यह बहुत ही कम उपदर्शित होता है कि उसे अपने कार्यों की पूर्ण रूप से समझ-बूझ नहीं थी ।

19. यह स्पष्ट है कि कोई विधिमान्य प्रतिरक्षा होने के बजाय अपीलार्थी की जोरदार दलीलों में केवल अपनी बात को न्यायोचित ठहराया गया है जिनसे यद्यपि हमारी सहानुभूति पैदा होती है, किंतु इससे विधि परिवर्तित नहीं हो सकती है । चूंकि भारतीय दंड संहिता के सुसंगत उपबंधों का किसी अन्य रीति में अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता है और उनके स्पष्ट और शाब्दिक अर्थ से अपीलार्थी के लिए कोई बचाव का रास्ता नहीं बचता है, इसलिए निचले न्यायालय प्रकटत: यह मत व्यक्त करने में सही थे कि अप्राप्तव्य की सम्मति व्यपहरण के आरोप के लिए कोई प्रतिरक्षा नहीं होगी । अत: भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि में कोई गलती नहीं पाई जा सकती है ।

II. क्या अधिनिर्णीत दंड न्यायसंगत है और क्या विलक्षण परिस्थितियों को देखते हुए उदारता बरती जानी चाहिए थी ?

20. इस प्रकार अभिनिर्धारित करने के पश्चात् हमारा यह विचार है कि ऐसे बहुत से कारक हो सकते हैं जो दोषिता का अवधारण करने के लिए सुसंगत न हों किंतु दंडादेश देने के प्रक्रम पर अवश्य मानवीय दृष्टिकोण के साथ विचार किया जाना चाहिए । दंडादेश देने के दौरान आनुपातिकता की आवश्यकता पर **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **सुरेन्द्र सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की राय पर अवश्य पुन: बल दिया जाना आवश्यक है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि :–

> "13. हम इस मामले में पुन: यह दोहराते हैं कि अपर्याप्त दंडादेश अधिरोपित करने के लिए असम्यक् सहानुभूति से न्यायिक व्यवस्था को और अधिक अपहानि होगी जिससे विधि की प्रभावकारिता में लोक विश्वास कम हो जाएगा । प्रत्येक न्यायालय

---

[1] (2015) 1 एस. सी. सी. 222.

का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और रीति, जिसमें वह अपराध निष्पादित या कारित किया गया था, को ध्यान में रखते हुए उचित दंडादेश अधिनिर्णीत करे । दंडादेश देने वाले न्यायालयों से यह प्रत्याशा की जाती है कि दंडादेश के प्रश्न से संबंधित सभी सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करें और अपराध की गंभीरता के अनुरूप दंडादेश अधिरोपित करने के लिए अग्रसर हों । न्यायालय को समुचित दंड के अधिरोपण पर विचार करते समय न केवल पीड़ित के अधिकारों को अपितु बृहत्त समाज के अधिकारों को भी ध्यान में रखना चाहिए । अपराध की गंभीरता पर विचार किए बिना मात्र समय बीत जाने के कारण अपर्याप्त दंडादेश अधिरोपित करना अंततोगत्वा प्रतिकूल साबित होगा और समाज के हित के विरुद्ध होगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

21. यह सही है कि दंडादेश में तब तक किसी यांत्रिक रीति में कमी नहीं की जा सकती है जब तक कि सभी सुसंगत कारकों पर विचार न किया गया हो और उसके उपरांत न्यायालय ने पाया हो कि मामले में घोर अन्याय करके, कठोरता से या सुस्पष्टतया स्वेच्छाचारिता से अयुक्तियुक्त दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया है । इस प्रकार, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि क्या वरिष्ठ न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप करना चाहिए या नहीं और परिणामस्वरूप दंडादेश में वृद्धि या कमी की जानी चाहिए या नहीं । प्रस्तुत मामले के विलक्षण तथ्यों और निकाले गए निष्कर्षों पर ये बातें लागू करते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि अपीलार्थी को दिए गए दंडादेश की मात्रा पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए ।

22. हम ऐसा निम्नलिखित कारणों से कह रहे हैं: प्रथम, यह स्पष्ट है कि व्यपहरण के कार्य में कोई बल प्रयुक्त नहीं किया गया था । कोई पूर्व योजना नहीं थी, किसी आयुध का प्रयोग नहीं किया गया था या कोई अभद्र हेतु नहीं था । यद्यपि भारतीय दंड संहिता की धारा 359 और 361 के अधीन यथापरिभाषित अपराध में ऐसा कोई संघटक नहीं है जिसमें किसी बल का प्रयोग किए जाने या कोई अस्पष्ट आशय सिद्ध

करने की आवश्यकता हो, तो भी दंडादेश देने के प्रक्रम पर अपराध की अनिष्ठुरता पर विचार किया जाना चाहिए ।

23. द्वितीय, यद्यपि यह एक निर्धारक कारक नहीं है, तो भी घटना के समय पर अभियुक्त की युवा आयु की अनदेखी नहीं की जा सकती है । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अपीलार्थी स्वयं वयस्कता के कगार पर था । अपराध करने के समय पर उसकी आयु लगभग 18 या 19 वर्ष से अधिक नहीं थी और स्वीकृत रूप से यह एक प्रेम संबंध का मामला था । अत: ऐसी युवा और अति-संवेदनशील आयु में उसके कार्यों को सुधार की आशा के साथ न कि दंडात्मक दृष्टि से देखा जाना चाहिए ।

24. तृतीय, दीर्घकालिक विचारण और विभिन्न स्तरों पर विलंब होने के कारण, घटना घटित हुए बाईस वर्ष से अधिक बीत गए हैं । पीड़िता और अपीलार्थी दोनों की अब लगभग 40 वर्ष आयु हो गई है; समाज के उपयोगी सदस्य हैं और अपने-अपने पति और पत्नी तथा परिवारों के साथ जीवन में स्थापित हो गए हैं । अत: अपीलार्थी को इस प्रक्रम पर कारागार में वापस भेजने से न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती है ।

25. चतुर्थ, प्रस्तुत अपराध भावावेश में किया गया था । न तो वर्ष 1998 से पूर्व या अब तक कोई अन्य आरोप, पूर्ववर्ती इतिहास या अपराध हमारे ध्यान में नहीं लाया गया है । अपीलार्थी पुनर्वासित हो गया है और एक सामान्य जीवन जी रहा है । अत: पुन: अपराध करने की संभावना अत्यंत कम है ।

26. पंचम, **हरियाणा राज्य** बनाम **राजा राम**[1] और **ठाकुरलाल डी. वादगामा** बनाम **गुजरात राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामलों के विपरीत, यह मामला अद्भूत रूप से शक्ति, धन, प्रास्थिति के दुरुपयोग या आयु का नहीं है जिसके विरुद्ध सुरक्षा किए जाने की आवश्यकता हो । अभियोक्त्री और अपीलार्थी दोनों एक जैसे सामाजिक वर्ग से संबंध रखते हैं और एक-दूसरे के भोगौलिक और सांस्कृतिक परिवेश में रहते हैं । शक्ति

---

[1] (1973) 1 एस. सी. सी. 544.

असंतुलन दूर की बात है, यदि अभियोक्त्री की आयु को न देखा जाए तो दोनों का प्रसन्नतापूर्वक विवाह हो सकता था और आज साथ-साथ रह रहे होते । वास्तव में, प्रस्तुत घटना एक अपराध है । तद्नुसार एक अधिक साम्यापूर्ण दंडादेश दिया जाना चाहिए ।

27. इन बहुत सारी विलक्षण परिस्थितियों को देखते हुए, हमारी यह राय है कि निचले न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत पांच वर्ष का कठोर कारावास का दंडादेश इस मामले के तथ्यों के अननुपातिक है । समाज और पीड़ित दोनों के सरोकारों का सम्मान किया जा सकता है और अपीलार्थी के दंडादेश को उसके द्वारा पहले ही कैद में व्यतीत की गई अवधि तक कम करने से भयपरतिकारिता और सुधार दोनों सिद्धांतों की पूर्ति हो जाएगी ।

निष्कर्ष

28. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया है और भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 366 के अधीन दोषमुक्ति का कोई मामला सिद्ध नहीं होता है । तथापि, दंडादेश की मात्रा को पहले ही भुगत लिए गए कारावास की अवधि तक कम किया जाता है । अत: यह अपील उपरोक्त निबंधनों के अनुसार भागत: मंजूर की जाती है और परिणामस्वरूप अपीलार्थी को रिहा किया जाता है । जमानत बंधपत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपील भागत: मंजूर की गई ।

जस.